फोनिक्स, अरिजोना, यूएसए
सितम्बर ०६, २००७

सन्देश संख्या १२४
मदर टेरेसा

''टाइम'' पत्रिका के ०३ सितम्बर २००७ अंक में छपे मदर टेरेसा की आवरण कथा को पढ़ते समय शिवेन्दु की आँखों में आँसू आ गए थे । १६६० के दशक के अन्तिम भाग में जब वह लगभग तीस वर्षों का युवा था तब उसे कुछ समय के लिए मदर के प्रेम और ऊर्जा के सान्निध्य में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था । तब उन्होंने बहुत स्नेहपूर्वक बंग्ला भाषा में बातचीत की थी । उनके अस्तित्व में ''मैं'' को खोज पाना असम्भव था । उस माँ की रिक्तता, पूर्णता और पवित्रता का क्या कहना ।

यह रिक्तता, ऊर्जा, निष्कपटता, शान्ति, समता और स्वतंत्रता ही दिव्यता है और इनसे उनका शरीर पूर्ण था । यह दिव्यता ही उनके शरीर का उपयोग कर कलकत्ता में निरंतर मर रहे कंगालों के मध्य उनकी सेवा का पवित्र कार्य कर रही थी । धर्मशास्त्रीय प्रवंचना के भारी बोझ और आडम्बरयुक्त कैथोलिक पुरोहितवर्ग से उनका कुछ भी लेना–देना नहीं था ।

उधार की विश्वास–पद्धतियों की मगज धुलाई से उत्पन्न अनुबन्धित प्रतिबिम्बों के रूप में ईसामसीह और ईश्वर के अनुभव में फँसना, उनकी पवित्रता के लिए सम्भव नहीं था । अतः वे शून्यता अर्थात् ईसामसीह और ईश्वर के अभाव का अनुभव कर रही थीं । विभेदकारी चित्तवृत्ति स्वयं को परस्पर विपरीतों और विभेदों द्वारा ही बनाये रखती है । रिक्तता उनके अस्तित्व की वास्तविकता थी किन्तु उसका अनुभव रिक्तता नहीं है । वास्तविकता कभी भी अनुभव नहीं होती । वह तो अस्तित्व है । उनके द्वारा शून्यता का अनुभव, कैथोलिक अनुबन्धनों द्वारा उत्पन्न आभासी अनुभव का विपरीत ही है । किन्तु पूर्ण ईमानदारी और विनम्रता के साथ सजगता की ऊर्जा ने ''जो है'', उसे ही अभिव्यक्त किया । उनके शरीर में अवस्थित ऐसे अस्तित्व को कोटिशः प्रणाम। किन्तु पुरोहित वर्ग के अभिमान और निहित स्वार्थ की विद्रूपता तथा उनके ''दिव्य अनुभवों'' के दावों के प्रति न कोई सम्मान, न कोई प्रणाम । भूतकाल के मानसिक प्रदूषणों से उत्पन्न समस्त पूर्वाग्रहों एवं विरोधाभासों का जब पूर्ण समापन हो जाता है तभी दिव्यता का उदय होता है । दिव्यता शाश्वत का परमानन्द है न कि अनुभव का बोझ। असीम को अज्ञेय ही होना चाहिए । ज्ञात तथा अज्ञात के सीमित क्षेत्र में लाकर उसे अपवित्र न करें ।

रेवरेण्ड और कार्डिनल, आर्क बिशप और पोप मदर के अस्तित्व की प्रक्रिया की व्याख्या ''विश्वास का संकट'' और ''ईशामसीह और ईश्वर का अभाव'' के रूप में कर सकते हैं किन्तु माँ की चेतना की शुद्धता इन सबसे परे है । और माँ लिखती हैं–''किन्तु ईश्वर से मिलकर एक होने की मेरी प्रार्थना अब नहीं होती है ..... अब मैं प्रार्थना नहीं करती ।''

प्रार्थना विभाजन और विभेद को स्थायी बनाती है । दिव्यता का उदय विभाजन की समाप्ति पर होता है । कोई भी ऐसी प्रार्थना नहीं है जो विभेदकारी चित्त अर्थात् ''मैं'' की भ्रांति को मिटा सके । कोई भी प्रार्थना ऐसी नहीं है जो मानसिक कारागार की दिवारों को ध्वस्त कर स्वयं से अर्थात् मन से तुम्हें अर्थात् जीवन को बिना शर्त एवं पूर्णरूपेण मुक्त कर सके । प्रार्थनाओं के माध्यम से कोई कुछ भी अनुभव करता हो, वह केवल अहंकार की ही यात्रा है । और अहंकार की सभी यात्राएँ विभाजन की ओर ही ले जाती हैं न कि अनाम एवं असीम की झलक की ओर ।

समस्त प्रकार के निःस्वार्थ कार्यों में लगे रहने के बावजूद ''मैं और ईसामसीह एवं ईश्वर के बारे में मेरे विचार'' के द्वैतपूर्ण अनुबन्धन के कारण उनके अस्तित्व में कहीं–न–कहीं कुछ–न–कुछ ''मैं–पना'' बचा रह गया था। यह ''मैं–पना'' रूपी भ्रान्ति ही सदमा, पीड़ा, लज्जा, दुःख और अपराध बोध उत्पन्न कर रहा था । ये सभी ''मैं–पना'' को बचाये रखने के तरीके हैं किन्तु इन्हें ही अत्यन्त ''आध्यात्मिक'' माना जाता है ।

माँ ने लिखा था : ''मेरे लिए ... शान्ति और रिक्तता इतना महान है कि मैं देखती हूँ किन्तु नहीं देखती .... मैं सुनती हूँ किन्तु नहीं सुनती ।'' ईश्वर को धन्यवाद है कि नन अर्थात् ईशामसीह की छोटी वधू के रूप में उनकी मगज धुलाई के बावजूद वे शान्ति और रिक्तता से वियुक्त नहीं हुई थीं । सांख्य, योग और वेदान्त के प्रवर्त्तकों कपिलाचार्य, पतंजलि और व्यास की पवित्र भूमि पर रहते हुए वे युक्त (योगिनी) बनी रहीं ।

।। जय मदर टेरेसा ।।